RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-04
Issue-08
August-2019

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[Peer Reviewed Journal]

महाभारत काल में प्रतिपादित राजनीतिक व्यवस्था का सामान्य विश्लेषण

Dr. Vishal Singh

Assistant Professor, S.R.S.P.G. College, Kumher, Bharatpur, Rajasthan (India)

ARTICLE DETAILS

Article History
Published Online: 16 Aug 2019

Keywords
निरोधात्मक, पारलौकिकता, वर्णों, श्लोक, निरंकुश, स्मृति

ABSTRACT

महाभारत में राजव्यवस्था का विकसित रूप पाया जाता है। राजनीतिक व्यवस्था के विकसित रूप में राजा को व्यापक अधिकार एवं कर्त्तव्य प्राप्त होते हैं। महाभारत युग में राजनीतिक व्यवस्था का राजा अन्तिम आस्पद तक बन जाता है। ऐसा माना जाने लगा है कि राजा के बिना समाज एवं राज व्यवस्था में अराजकता के अलावा कोई विकल्प नहीं है। इस सन्दर्भ में उसके निरंकुश होने का भी प्रश्न उठता है। राजा के केन्द्रीय शक्ति के विकास में पश्चिमी विद्वानों की यह आम धारणा रही है कि भारतीय राजनीतिक व्यवस्था का स्वरूप अनियन्त्रित तथा स्वेच्छाचारी है। नारद स्मृति के एक श्लोक के आधार पर यह माना गया कि धर्मशास्त्र एवं अर्थशास्त्र परम्परा में राजा की आज्ञा को चुनौती देने वाली कोई शक्ति नहीं है चाहे उसकी आज्ञा व्यक्ति एवं समाज के विपरीत ही क्यों न हो। परन्तु महाभारत में राजा को नियन्त्रित करने के उचित साधन मौजूद है। जिससे इस तरह के भ्रम का खण्डन होता है। महाभारत में राजनीतिक व्यवस्था पर नियन्त्रण की बिखरी सामग्री को एकत्रित करने पर नियन्त्रित राजनीतिक व्यवस्था का रूप सामने आता है। नियन्त्रण के मुख्यतः दो साधन है–निरोधात्मक एवं प्रतिरोधात्मक। इसमें नियंत्रण के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों तत्वों का समन्वय है।

1. Introduction

इसमें राजा के आत्मनियन्त्रण की बात आती है। राजा का मत है कि विद्यार्थी जीवन में राजा के लिए ब्रह्मचर्य का पालन आवश्यक है। ब्रह्मचर्य से उसमें नैतिक अनुशासन की भावना उत्पन्न होती है। नैतिक रूप से अनुशासित राजा राज्य के तत्वों पर कठिन परिश्रम करके ज्ञान प्राप्त करता है कौटिल्य राजा के आत्मानुशासन पर बल देते हैं। काम, क्रोध, मद, लोभ, ईर्ष्या, दम्भ आदि प्रवृत्तियों का राजा में जन्म नहीं होना चाहिए। शुक्र राजा के जीवन में आत्मानुशासन को बहुत महत्व देते हैं। पहले राजा स्वयं नियन्त्रित बने, फिर पुत्र का करें, पुनः मन एवं राजकर्मचारियों को एवं अन्त में तभी वह प्रजा को नियन्त्रित कर सकता है।[1] याज्ञवल्क्य मानते है कि राजा शक्तिमान, दयालु दूसरे के अतीत कर्मो को जानकर तप, ज्ञान एवं अनुभव वालों पर आधारित है। आत्मानुशासित राजा अच्छे और बुरी परिस्थिति में अविचलित रह सकता है। कामन्दक में राजा के 51 गुण और शान्तिपर्व में 36 गुणों की सूची से राजा में आत्म नियन्त्रण का भाव स्पष्ट होता है। वस्तुतः प्राचीन भारतीय विचारक किसी भी व्यक्ति को राजा तब तक नहीं स्वीकारते जब तक वह आत्म नियन्त्रित होकर अपनी नैतिक शिक्षा को पूरा नहीं करता। अतः नैतिक शिक्षा राजा पर प्रत्यक्ष एवं प्रभावकारी नियंत्रण है।[2]

नैतिक अनुशासन का तात्पर्य है राजा के नैतिक व्यक्तित्व का निर्माण। इससे नैतिक राजनीति का स्वरूप प्रस्तुत होता है। आन्तरिक दुर्गुण न होने से राजा कभी भी अत्याचारी नहीं हो सकता। फलतः यह मान्यता सर्वमान्य रही कि उस पर आन्तरिक नियन्त्रण स्थापित बाह्य नियन्त्रणों के साधनों की अपेक्षा ज्यादे प्रभावकारी होता है। इसलिए आधुनिक युग की तरह किसी विधायी अथवा संवैधानिक नियन्त्रण का समर्थन नही किया गया। धर्मशास्त्र परम्परा में राज्य एक पवित्र ट्रस्ट है। अतः पवित्र ट्रस्ट में नैतिक अनुशासन की बात उचित लगती है।[3]

राजा की शिक्षा के निर्धारित पाठ्यक्रम के विषय में मतभेद है। सामान्यतः राजा को चार प्रकार की शिक्षा लेनी पड़ती है (1) आन्वीक्षिकी (2) त्रयी (3) वार्ता (4) दण्डनीति। महाभारत में राजा को नीतियों से तार्किकों से, सनातन दण्डनीतिज्ञ, योगियों से, तर्क विद्या और व्यवहारज्ञों से आत्म विद्या की शिक्षा लेनी चाहिए। कौटिल्य उक्त तीनों विधाओं को दण्ड पर आधारित करते हैं। दण्ड सहज एवं अधिक दो प्रकार के अनुशासन पर निर्भर है। कौटिल्य चूँकि अधिक यथार्थवादी है इसलिए वे राजा के लिए निर्धारित समस्त पाठ्यक्रम को दण्डनीति के अन्तर्गत ही मानते है। उनका मत है कि राजा को विद्या से अनुशासन की प्राप्ति होती है। शिक्षा से राजा की बुद्धि अनुशासित होती है। जिससे वह प्रजा को अनुशासित करने में सफल होता है तथा प्रजा कल्याण में हमेशा तत्पर रहता है।[4]

राजा का व्यवहार, आचरण, कार्य सब कुछ धर्म नियंत्रण है। वह धर्म पालक एवं धर्म रक्षक है। धर्म का पालन करना, धर्म की रक्षा करना, धर्म को लोप होने से बचाना और धर्मानुसार कार्य करते हुए प्रजा कल्याण में संलग्न रहना राजा की सत्ता का आधार है। वैदिक काल से ही राजत्व को ''सर्वस्वेण धर्मधिष्ठित माना जाता रहा है। संसार के सर्वप्रथम राजा पृथु को यह प्रतिज्ञा करनी पड़ी कि वह श्रुति स्मृतियों में जो धर्म माना गया है उसका पूरा पालन करेगा एवं कदापि उल्लधंन नहीं करेगा। पृथु की धर्मोचित आचरण करने की

RRIJM 2015, All Rights Reserved

प्रतिज्ञा से गैर राजनीतिक अन्धविश्वास का प्रश्न नहीं उठता। राजा द्वारा धर्म पालन की प्रतिज्ञा लौकिक एवं राजनैतिक है। राजत्व और धर्मपालन दोनों अभिन्न है। अर्थात् धर्म पालन की प्रतिज्ञा न होने पर राजत्व सम्भव ही नही।[5]

धर्म नियन्त्रण का तात्पर्य पारलौकिकता या मात्र नैतिक नियन्त्रण नहीं इसका सम्बन्ध व्यवहारिकता से है। यद्यपि अर्थशास्त्र की अपेक्षा धर्मशास्त्रों ने धर्म नियंत्रण को अधिक प्रभावशाली साधन माना। परन्तु इसमें लौकिकता का ही भाव स्पष्ट होता है। धर्म का अभ्युदय पहले है, निःश्रेयस बाद में। महाभारत में उत्तराधिकार, दयाभाग, स्वामी–सेवक सम्बन्ध, सम्पति सिद्धान्त, समाज के अधिकार, प्रथा, परम्परा आदि का अर्थ लौकिक है उनका धर्म से व्यावहारिक सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध के धर्म के रूप में समाज राजा पर नियंत्रण करता है। सम्पत्ति के नियमों की सुरक्षा राजा के लिए अनिवार्य है। सम्पत्ति के सिद्धान्त धर्म तथा समाज द्वारा निश्चित होते है।समाज एवं सम्पत्ति के सम्बन्धों में राजा से हस्तक्षेप की अपेक्षा नहीं की जा सकती। अतः राजा सम्पत्ति सम्बन्धी सामाजिक नियमों के नियंत्रण में है। राजनीतिक सिद्धान्त और राजनीतिक सम्बन्ध राजधर्म जो राज्य के मुख्य विषय है, उनका निर्णय धर्म कराता है। अतः राजा पर समाज राजनीति इत्यादि का नियन्त्रण धर्म नियन्त्रण है।[6]

वस्तुतः समाज में कौन सा अंश उपेक्षित और कौन सा आवश्यक है, इसका निर्णय समाज के घटक स्वयं करते है। राजा केवल वातावरण प्रस्तुत करता है, जिससे समाज में स्वयं संचालन की शक्ति आये। उसके स्वंय संचालन में जहां बाधा हो, उसे दूर करना राजा का धर्म है। इस अवस्था में धर्म परम्परा की रक्षा तो होती ही है, साथ ही समाज राज्य की अपेक्षा न कर स्वंय अपनी व्यवस्था करने की शक्ति रखता है, क्योंकि शक्ति राजा में नहीं धर्म में निहित होती है। इस रूप में नौकरशाही के स्थान पर सहकारिता और सहयोग का सहज रूप सामने आता है।[7]

राजनैतिक नियन्त्रण में विधि, परम्परा, जनमत तथा सभाओं के नियन्त्रण आते हैं। प्राचीन भारत में राजा के विधायिका सम्बन्धी अधिकार सीमित है। इस सम्बन्ध में वह जिन अधिकारों का प्रयोग करता है वे विधायिका की अपेक्षा कार्यपालिका सम्बन्धी अधिक है। सामाजिक, धार्मिक व्यवहार सम्बन्धी नियम श्रुति एवं स्मृतियों में वर्णित है। मान्यता इस बात से और अधिक स्पष्ट हो जाती है। भारतवर्ष की पवित्र भूमि में व्यवहारित आचार का पालन करना राजा का दायित्व है। इतना ही नहीं विजित देश की विधि परम्परा को ज्यों का त्यों स्वीकार करना एवं उसके अनुशासन में कार्य करना विजयी राजा के लिए अनिवार्य है।[8]

राजनीतिक व्यवस्था पर जनमत का सीधा नियन्त्रण है। प्राचीन जनमत आधुनिक की तरह अनिश्चित नहीं है। वह राज्य के अधिकारों की तरह अनिश्चित नहीं है। वह राज्य के अधिकारों में सीधी साझेदारी करती है। राजा कोई भी कार्य जनमत के विपरीत नहीं कर सकता। राजा के स्थायित्व का आधार जनता का उसके प्रति अनुकूल होना है। प्राचीन भारतीय राजनीतिक व्यवस्था की प्रकृति जनमत के आधार पर निर्धारित होती है।

जनमत के स्वरूप का निर्धारण समाज की प्रकृति से होता है। भारतीय समाज सशस्त्र समाज है, जिसमें प्रत्येक नागरिक को शस्त्र रखने का अधिकार उसके न्यूनतम अधिकार का अंग होता है, सशक्त समाज हमेशा ही सभ्य समाज है। ऐसे समाज में धर्म संस्कृति, नैतिकता, संस्कार आदि का उचित प्रयोग व्याप्त है। ऐसे समाज में राजशक्ति समाज में विकसित होती है न कि उसका निर्धारण राजशक्ति की ओर से होता है। भारतीय समाज राजसत्ता को जन्म देता है और उस पर नियन्त्रण रखता है। राजा समाजशक्ति का साधन है।

समाज के उक्त प्रकृति में विधि निर्माण की शक्तियों पर राजसत्ता का स्वामित्व न होकर समाज का उस पर नियन्त्रण है। लिखित और अलिखित विधि के दो स्त्रोत है। लिखित में श्रृति ओर स्मृतियाँ आती है और अलिखित में रीति–रिवाज, प्रथा, परम्परा आदि होते हैं। लिखित विधि में परिवर्तन संशोधन या रद्धो–बदल का अधिकार राजसंस्था के पास नहीं है। इसमें संशोधन एवं व्याख्या का पूरा अधिकार समाज प्रतिष्ठित प्रतिनिधियों का है। अलिखित विधि समाज से आती है और उसी के व्यवहार का अंग है इससे भी राजा का सम्बन्ध नहीं है। वह भी विधि का आज्ञापालन सामान्य व्यक्ति की तरह करता है। इस प्रकार विधायिका अधिकार समाज के हाथों में सुरक्षित होने के नाते समाज की स्थिति शक्ति सम्पन्न हो जाती है। लिखित और अलिखित दोनों ही प्रकार की विधि राजशक्ति के आतंक से मुक्त स्वतन्त्र जनमत व्यक्त करने में पूर्ण सार्थक होता है।

समाज की रचना आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक घटना की स्वायत्तता पर निर्भर करती है। सामाजिक क्षेत्र में समाज चार वर्णों में विभक्त है। वर्णों के अधिकार एवं कर्तव्य निश्चित और इनके प्रयोग की प्रक्रिया सामाजिक है। समाज सामाजिक इकाईयों के प्रयोग की व्यवस्था स्वयं करता है। इसमें राजा के परामर्श एवं उसकी आज्ञा जैसी कोई अनिवार्यता नहीं है। यदि कोई व्यक्ति या समुदाय समाज द्वारा स्थापित नियमों एवं व्यवस्था का उल्लंधन करता है तो भारतीय समाज उसे दण्ड देने में समर्थ है। बहुत ही कम सामाजिक विषय राजनीतिक व्यवस्था एवं राजशक्ति के कार्यक्षेत्र में आते हैं। राजा कम से कम शासन करने वाला शक्ति मात्र है। इसी स्थिति में समाज के घटक अपने अधिकार और कर्तव्य का पालन करने में स्वायत्त और स्वतंत्र होने से जनमत का स्वरूप भी स्वतंत्र हो जाता है। उसकी अभिव्यक्ति में राजशक्ति से किसी प्रकार भय अथवा बाधा का प्रश्न ही नहीं उठता।

समाज में श्रेणी, गण, पूग एवं संघ जैसे आर्थिक संगठनों का अस्तित्व है। इन संगठनों को आर्थिक स्वायत्तता

इतने अंश में प्राप्त है कि वे सीमित रूप में अपने सिक्के भी चलाने में समर्थ रहे। आर्थिक संचालन में वे विधि निर्माण, सदस्यों के लिए नियम निर्माण, उत्पादन, विनिमय एवं वितरण आदि सभी कुछ व्यवहार में कर लेने में समर्थ है। राजा की ओर से हस्तक्षेप तभी सम्भव है, जब इन संगठनों के सामने सुरक्षा का प्रश्न हो, या वे स्वयं अपने नियमों का उल्लधंन करे। फलतः आर्थिक संगठनों की स्वायत्तता के कारण जनता की आर्थिक स्थिति राजशक्ति के दबाव से मुक्त है। राजा स्वयं अपनी आर्थिक शक्ति संचय करने में समाज के इन घटकों या आर्थिक इकाइयों पर निर्भर करता है। जब राजा ही आर्थिक घटकों पर निर्भर है तो आर्थिक स्वायत्तता जनमत की अभिव्यक्ति में कैसे परतन्त्र हो सकता है।

धर्म समाज एवं राज्य दोनों का आधार है, इस प्रकार की व्याख्या से धर्म का क्षेत्र व्यापक हो जाता है। धर्म व्याख्या में प्राथमिक भागेदारी समाज की होती है। राजशक्ति उसका अनुगमन करती है। अनुगमन न करना राजा के लिए अपराध माना गया। हर अपराध के लिए दण्ड निर्धारित है, इस अर्थ में राजा दण्ड का भागी होता है। धार्मिक विषयों पर जनमत अत्यन्त सशक्त रहा है। राजा उनमें किसी प्रकार का हस्तक्षेप करने का साहस नहीं कर सकता।

समाज की अभिव्यक्ति है, संस्कृति। भाषा, प्रथा, रीति–रिवाज, इतिहास, कला, दर्शन, राजनीति आदि समस्त चिन्तन संस्कृति के अंग है, जो समाज से उत्पन्न होते है इनका संरक्षण राजा का दायित्व है। संस्कृति स्वायत्तता से सम्पन्न समाज एवं उससे उत्पन्न जनमत की अभिव्यक्ति राजशक्ति के ऊपर नियंत्रण का सबसे शक्तिशाली हथियार है।

राजनीतिक संगठनों की स्वायत्तता स्वतन्त्र जनमत का अनिवार्य अंग है। राज्य के अन्य तत्व राजा के समकक्ष स्वायत्त एवं उसके स्त्रोत वैदिक काल से लेकर स्मृति काल तक, ग्राम से लेकर केन्द्र तक राजनीतिक संगठनों की प्रक्रिया चलती रही है। राजशक्ति इन्ही के द्वारा निर्धारित एवं नियन्त्रित होती रही। राजनीतिक संगठनों में जनता का प्रत्यक्ष सहयोग अनिवार्य है। इन्हीं संगठनों में राजशक्ति पैदा होती है जनमत का सीधा स्वामित्व राजनीतिक व्यवस्था पर निर्भर है। फलतः भारतीय समाज एवं उससे उत्पन्न जनमत अपनी स्वतन्त्र भूमिका निभाने में सक्षम हो जाते है।

प्रचार एवं प्रसार राजनीतिक व्यवस्था के विकेन्द्रीकरण के साधन रहे हैं। भारतीय सामाजिक व्यवस्था की विशेषता है कि ग्राम एवं स्थानीय स्तर पर विचार–विमर्श कर्मकाण्ड, यज्ञ, उत्सव आदि के द्वारा जनमत क्रियाशील रहता है। यह केन्द्रीय राजशक्ति से या तो अप्रभावित रहता है या उसे सामाजिक शक्ति के साथ जोड़ने में मध्यस्थ की भूमिका निभाता है। अतः धार्मिक कर्मकाण्ड और यज्ञ सामाजिक राजनीतिक प्रक्रिया के अंग है। इस प्रकार जनमत और राजनीतिक व्यवस्था के मध्य सम्बन्ध स्थापित करने की प्रक्रिया चलती रहती है। इस प्रक्रिया में राजा जनमत की अवहेलना नही कर सकता। राजशक्ति के प्रति विद्रोह करने की वैध और व्यवहारिक शक्ति जनता के पास सुरक्षित है। जनता एवं समाज सशत्र एवं सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, विधायी सभी प्रकार की शक्तियों से सम्पन्न है। राजशक्ति इस प्रकार की स्थिति को समाप्त नहीं कर सकता। राजनीतिक व्यवस्था में विधायिका शक्ति से शून्य हो जाने के कारण समाज उक्त विशेषतओं से सम्पन्न हो जाता है। फलतः स्वतन्त्र जनमत राजनीतिक व्यवस्था का स्वरूप निर्धारित करता है।[9]

जनमत के सैद्धान्तिक विश्लेषण की ऐतिहासिक परम्परा रही। जनमत का स्वरूप सदा एकसा कभी नहीं रहा। उसमें क्रमिक परिर्वतन हुए। वैदिक युग से मनुस्मृति तक परिर्वतन का यह क्रम जारी रहा। राजा और समाज के बीच विकसित होने वाले सम्बन्धों में परिर्वतन से जनमत के परिर्वतन की प्रक्रिया चलती है जनमत की शक्ति का स्वरूप युग दर युग बदलता रहा।

वैदिक युग में विभिन्न सामाजिक संगठनों के द्वारा सारी व्यवस्था का संचालन होता है। इस युग में जनता अपने आदर्श स्थिति में मौजूद थी। राजसत्ता उसका अनुगमन करती है। राजा का मुख्य दायित्व जनमत के संरक्षण में है। राजा जनमत की कृपा का पात्र है। समाज के विभिन्न घटक सारी व्यवस्था यहां तक कि प्रशासन तक का दायित्व जनमत के द्वारा निभाया जाता है। उत्तर वैदिक काल में सामाजिक शक्ति को अभिव्यक्त करने वाली संस्थाओं का लोप होने लगता है, लेकिन राजा उसी प्रकार समाज का संरक्षक रहता है जैसे समाज के अन्य घटक। लेकिन राजशक्ति की बढ़ती हुई सीमा से जनमत की शक्ति घटती हुई मालूम पड़ती है, इस स्थिति में भी जनमत राजतन्त्र पर नियन्त्रण के सन्दर्भ में पूर्ववत है। अर्थशास्त्र एवं धर्मशास्त्र में राजा और राजशक्ति का विकास अपने चरम सीमा पर होता है। नई सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियां एवं नये धार्मिक आन्दोलनों से समाज की शक्ति राजा के साथ जुड़ने लगती है। इस स्थिति में जनमत की शक्तियों का कमजोर पड़ना स्वाभाविक है। कौटिल्य और मनु में इतना अवश्य है कि जनता की शक्ति में हास नही हो पाता। राजा की शक्ति में जो विकास होता है, वह संयमित और प्रशासनिक ज्यादा है, विधि निर्माण सम्बन्धी कम। विधि की व्याख्या की शक्ति समाज के हाथों में रहती है। मनु एवं कौटिल्य में राजनीति व्यवस्था के जिस कल्याणकारी रूप का विकास हुआ उससे राजा की शक्ति का विकास होने पर भी वह जनमत को अपने नियन्त्रण में नहीं ले पाता। जनमत अपने साधनों के प्रयोग में स्वतन्त्र रहती है।

महाभारत के युग में समाज के सामन्तीकरण की प्रक्रिया चलती है उसके प्रभाव से जनमत राज्य और समाज के विभिन्न घटक प्रभावित होते हैं। राजशक्ति का प्रभाव समाज शक्ति पर पड़ने के कारण जनमत के साधनों पर राजशक्ति का अधिकार भी सम्भव होने लगा। स्थानीय संस्थाओं के प्रभाव पर सामन्ती प्रभाव बढ़ता है। इससे जनमत की शक्तियों

निश्चित रूप से कमजोर पड़ती है। पश्चिमोत्तर सीमा से आक्रमण की सम्भावना अधिक बढ़ने से राजशक्ति ने जनमत को प्रभावित करने का प्रयास किया। अनियन्त्रित जनमत एवं जनशक्ति को नियन्त्रित करने का पहले ही प्रयास कर चुका है। इसमें जनमत पर राजशक्ति का प्रभाव बढ़ने लगा है।

प्रतिरोधात्मक नियन्त्रण के तीन साधन है। राजा पर जुर्माना, राजा की सत्ताच्युति तथा राजा की हत्या। इन साधनों से राजनीतिक व्यवस्था पर नियन्त्रण के व्यावहारिक तत्व की पुष्टि होती है। कठोर दण्ड के परिणामस्वरूप राजा अत्याचारी एवं निरंकुश बनने की सोच भी नही सकता। पश्चिमी राजनीतिक व्यवस्था में तमाम विशेषताओं का गुणगान करने वाले विचारक इस तरह के किसी दण्ड की व्यवस्था नहीं कर पाते। प्रतिरोधात्मक नियन्त्रण के साधनों की व्यावहारिकता सिद्ध करते है। महाभारत में कहा गया है कि रागद्वेष के वशीभूत होने तथा प्रजाओं पर अत्याचार करने के कारण वेन की हत्या ब्राह्मणों ने की।[10]

राजा अपनी गलतियों को स्वीकार करें तो इसके लिए उसे जुर्माना देना पड़ता है। गलती स्वीकार करने पर यदि एक साधारण व्यक्ति को एक कर्षापण दण्ड भरना पड़ता है तो राजा को एक हजार कर्षापण दण्ड भरना पड़ेगा। स्पष्ट है कि राजा की सत्ताच्युति का विचार भारतीय परम्परा में सर्वमान्य है। वैदिक काल में राजतन्त्र के निर्वाचित रूप के कारण जनसभा के हाथ में सत्ताच्युति का अधिकार है। उत्तर वैदिक काल में रत्नी की संस्था यदि राजा को सत्ता देती है तो वही उससे सत्ता छीन भी सकती है। कौटिल्य मत व्यक्त करते हैं कि कंगाल, लालची एवं असन्तुष्ट प्रजा अपने मालिक की हत्या कर देती है। अत्याचारी राजा अपने प्रजा अथवा अपने शत्रुओं द्वार नष्ट हो जाता है। मन्त्रियों के चरित्र की पवित्रता के वर्णन में कौटिल्य का मत है कि प्रजा अन्यायी राजा को हटाकर उसकी जगह न्यायी राजा को सत्ता सौंप सकती है। कौटिल्य अन्यायी राजा की जगह दूसरे राजा को सिंहासनारूढ़ करने की बात करते हैं। शान्तिपर्व कौटिल्य की विचारधारा का समर्थन करता है, लेकिन वहां अत्याचारी एवं न्यायी राजा में स्पष्ट भेद किया गया है। घोषाल अत्याचारी एवं न्यायी राजा के मध्य स्पष्ट भेद करने का सर्वप्रथम श्रेय शुक्र को मानते हैं। और दूसरे जगह इसका श्रेय अन्य को दे देते हैं। शान्तिपर्व में कहा गया कि जो राजा दुष्ट एवं पापी मन्त्रियों की सहायता से धर्म को हानि पहुँचाता है, उसकी हत्या उसके परिवार सहित प्रजा कर देती है। अर्थ सिद्धि की चेष्टा न करने एवं असत्य प्रचार करने वाले स्वेच्छाचारी राजा चाहे वह सम्पूर्ण पृथ्वी का शासक ही क्यों न हो प्रजा को उसकी सत्ताच्युति का अधिकार है। अनुशासन पर्व में निरंकुश राजा के विरूद्ध जनता को शस्त्र सज्जित होने की सलाह दी गयी है।[11]

शासन की सुविधा के लिए विभिन्न प्रशासकीय इकाईया थी। प्रत्येक इकाई का एक अध्यक्ष होता है। विष्णु स्मृति चार, रामायण महाभारत अठ्ठारह विभागों को विवरण देते है। कौटिल्य ने विभागों की संख्या में और अधिक वृद्धि की। शुक्र विभागों की संख्या 20 मानते हैं। प्रत्येक अध्यक्ष के नीचे के कर्मचारी राजा के प्रति उत्तरदायी न होकर अपने विभाग अथवा इकाई के प्रधान के प्रति उत्तरदायी थे। विभाग का अध्यक्ष स्थानीय निर्णय लेने में सत्ता सम्पन्न था। केन्द्र इसमें मात्र निरीक्षण का अधिकार रखता था।[12]

धर्मशास्त्रों ने शासन की तीनों शक्तियों को एक स्थान पर केन्द्रित न मानकर उनके विकेन्द्रीकरण पर जोर दिया। व्यवस्थापिका के अधिकार में राजा विधि के क्रियान्वयन में साधन मात्र है। कार्यपालिका एवं न्यायपालिका शक्तियां एक दूसरे से पृथक है। राजा उनका प्रधान है, परन्तु वह मात्र निरीक्षण का अधिकार रखता है। न्यायपालिका के संगठन में राजा निर्णय लेने का एक मात्र अधिकारी नहीं है। राजा या प्राड्विवाक भी तीन, पांच या सात सभासदों की सहायता के बिना किसी मामले पर विचार नहीं कर सकते।[13]

राजनीतिक व्यवस्था के विकेन्द्रीकरण की और अधिक पुष्टि हो जाती है। ग्राम शासन की धुरी है। राज्य के आकार बढ़ने के बावजूद भी ग्राम को प्रारम्भिक इकाई माना गया है। राज्य के आन्तरिक नीतियों के निर्धारण में ग्राम प्रमुखों की महत्वपूर्ण भूमिका है। बिम्बिसार अपने को अस्सी हजार ग्रामों पर शासन करने वाला शासक कहते हुए गर्व का अनुभव करता है।

पाणिनी में बाहीक ग्राम तथा उदोच्य ग्राम सूत्र जैसे स्थानीय स्वायत्त संगठनों का उल्लेख है। इसके अलावा घोष तथा खेड़ों जैसे संगठनों का भी उल्लेख प्राप्त होता है। रामायण में घोष तथा ग्रामा का प्रधान ''ग्रामणी'' है, जो ग्रामीण प्रशासन में स्वायत्त अधिकारी है। ऋग्वेद में भी ग्रामणी का उल्लेख आया है। कीथ ने इसे ग्राम का अध्यक्ष माना। रन्तियों की सूची में इसका उल्लेख है। राजा एवं ग्रामीण प्रजा के मध्य यह एक सूत्र में है।[14]

आधुनिक कल्याणकारी राज्य के आधारभूत सिद्धान्त निश्चित है। वैयक्तिक उद्योग विकास नियोजित आर्थिक विकास के साथ होनी चाहिए। उत्पादन, शुल्क, क्रय–विक्रय तथा बाजार पर राज्य नियन्त्रण इस प्रकार के उद्योगपति, व्यापारी, मुनाफाखोर, जनकल्याण के विपरीत व्यवहार न कर सके। उत्पादनकर्ता और उपभोक्ता के बीच इस प्रकार के सम्बन्ध स्थापित होने चाहिए ताकि हड़ताल, तालाबन्दी तथा अन्य विषम स्थिति न उत्पन्न हो सके। जनकल्याण और राजसमृद्धि के दृष्टि से विदेशी व्यापार पर नियन्त्रण किया जाना चाहिए। जनता के कल्याण और भविष्य की सुरक्षा के साथ उसके स्वास्थ्य, शिक्षा, आवास की व्यवस्था तथा समाज के गरीब, विकलांग एवं अनाथों की सहायता की व्यवस्था होनी चाहिए। राज्य आवश्यकतानुसार स्वयं भी उद्योग और कृषि का उद्यम कर सकता है। आधुनिक कल्याणकारी राज्य को आधुनिक औधोगीकरण की देन माना जा सकता है। व्यक्तिवाद के प्रति प्रतिक्रिया, विकासवादी समाजवाद का बढ़ता प्रभाव

मताधिकार का विस्तार एवं लोकतन्त्र के विकास से आधुनिक लोक कल्याणकारी अवधारणा को विकसित किया। यह दो अतिथियों में समझौता है, जिसमें एक तरफ साम्यवाद है, दूसरी तरफ अनियन्त्रित व्यक्तिवाद लोक कल्याणकारी राज्य की आड़ में आधुनिक राज्य साधन नहीं, साध्य बन चुके है। वैयक्तिक स्वतन्त्रता का हनन, ऐच्छिक समुदायों पर आघात, नौकरशाही का भय एवं स्वायत्तशासी संगठनों में हास जैसे तत्वों का उदय से राज्य का उक्त रूप सामने आया है। प्राचीन भारत में राज्य की कल्याणकारी अवधारणा से भिन्न राज्य की प्रकृति में सहज समाहित है। यह राज्य को साध्य मानने के हथियार के रूप में इस्तेमाल नहीं की जा सकती।[15]

आधुनिक कल्याणकारी राज्य में कृषि पर समाजवादी ढंग का नियन्त्रण है। अर्थात राज्य पर समाजवादी ढंग का नियन्त्रण है। अर्थात राज्य का कृषि पर एक ढंग से स्वामित्व है। प्राचीन भारत में राजा कृषि पर स्वामित्व की कल्पना नहीं कर सकता। राजा का कार्य मात्र उत्पादन क्षमता में वृद्धि के लिए सहायता एवं उपयुक्त वातावरण का निर्माण करना है। प्राचीन भारत में एक आम धारणा रही कि अपूर्ण स्थानों को छोड़कर आवश्यकता पड़ने पर किसी भी स्थान पर कृषि सम्भव है। राजा की ओर से निजी कृषि इस अवस्था में की जाती है जब वैयक्तिक क्षेत्र बिल्कुल साधन विहीन न रहे। जहां कृषक चाहते हुए भी साधनों के अभाव तथा अन्य असुविधाओं के कारण कृषि नहीं कर पाते, उन स्थानों पर राजा कृषि की निजी व्यवस्था करता है। किसानों के वैयक्तिक कृषि के लिए प्रवृत हो जाने पर राजा अपने को कृषि के निजी क्षेत्र से हटा लेता है।

व्यापार के क्षेत्र में राजा प्रतियोगी नही है। जिन स्थानों में व्यक्ति निजी पूंजी लगाने में असमर्थ हो या निजी पूंजी के क्षेत्र में जनता का शोषण हो रहा हो ऐसी अवस्था में राजा व्यापार को अपने हाथ में लेकर शोषण पर नियन्त्रण स्थापित करता है परन्तु सामान्य स्थिति होने पर जब निजी उत्पादन की आशाऐं समाज के अनुकूल हो जाय तो राज्य व्यापार क्षेत्र से अपने को हटाकर व्यापार, उद्योग एवं राष्ट्रीय उत्पादन के लिए वातावरण प्रस्तुत करने में लग जाता है।

मनु मानते हैं कि जनता के नैतिक विकास पर राजा को विशेष ध्यान देना चाहिए। राज्य में कुछ ऐसे स्थान होते हैं, जहाँ अनैतिकता, व्याभिचार जैसी अनेक दुर्भावनाओं का जन्म होता है ये अत्यन्त विघटनकारी तत्व होते हैं, जिनसे सामाजिक कल्याण की भावना में बाधा उत्पन्न होती है। राजा इस ओर विशेष ध्यान देता है। वेश्यालय, मद्यशाला, जुआघर आदि के व्यापारियों को राजा नियन्त्रित करता है।

निष्कर्ष :–

महाभारत में सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं राजनीतिक संगठनों की स्वायत्तता के फलस्वरूप राजशक्ति जनमत के विपरीत होने पर जनमत के अभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतंत्रता मौजूद है। स्थानीय इकाईयों की स्वायत्तता के माध्यम से जनता की राजनीतिक व्यवस्था पर नियन्त्रण स्थापित करती है। रामायण एवं महाभारत की विशाल परम्परा में जो घटनायें सामने आती है उनसे स्पष्ट है कि समाज एवं जनता की शक्ति, राजशक्ति पर नियन्त्रण स्थापित करने में स्वतन्त्र है और जनमत के साधनों की स्वायत्तता बरकरार रहती है। अठारहों पुराण एवं उप–पुराण, बौद्ध जैन ग्रन्थों आदि में स्थापित राजनीतिक की परम्परा से स्पष्ट है कि जनमत ही सारी राजनीतिक शक्ति एवं प्रक्रिया का आधार बना रहा।

सन्दर्भ सूची

[1]. Sen, A.K. Studies in Hindu Political Thought. pp. 65-66
[2]. नारद स्मृति Secred Books of the East, Vol. XVIII, p.21
[3]. Law, Narendra Nath, Aspects of Ancient Indian Polity, p. 72, Chap. v.
[4]. याद्वा. 1/309–311
[5]. अल्टेकर, प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृ. 72
[6]. अल्तेकर, प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृ. 69
[7]. Sen. A.K. Studies in Hindu Political Thought. pp. 69
[8]. Calcutta Weekly Noted Vo. 15, p. XXII-XXIV, See, Sen Gupta, N.C. Sources of Law
[9]. Seletone op. cit., pp. 530-31, kane, P.V. op.cit. Vol. III, pp. 159-65 Rhys Davids, Budhist India pp. 45-51 etc.
[10].महा. शा. 59/94
[11].Secred Books of East., Vol. 25, p. 336 अर्थ. 4/13
[12].Sen, A.K. Studies in Hindu Political Thought, p. 81
[13].महा. 4/5/38
[14].Sinha, B.P. The kautiliyan State and Walfarestate Journal of Bihar Research Society, Vol. XI, p. 178
[15].The Kautiliyan State, J.B.R.S.P., 180-181, Vol. Xi, Part 2

RRIJM 2015, All Rights Reserved